प्रथम अध्याय

प्रस्तावना एवं साहित्य पुनरावलोकन

प्रस्तावना

'भारतीय रंगमंच' भारत की तरह ही विविध छवियों का जटिल मिश्रण है जिसमें बहुत सारी रंग परंपराएं मिल कर भारतीय रंगमंच का स्वरूप बनाती है। इसमें स्थानगत, समयगत, शैलीगत, कथ्यगत विविधता है तो आंतरिक एकता का सूत्र भी है। भारतीय रंगकर्म आरम्भ से बहुआयामी रहा है. अपने हजारों वर्षों की समृद्ध परंपरा में संस्कृत रंगमंच से समकालीन रंगमंच तक के सफ़र में कथ्य से लेकर स्वरुप तक कई स्तर पर व्यापक बदलाव हुए. समय के साथ मंच बदला तो मंच पर प्रस्तुति का तरीका भी. भारतीय रंगमंच में विशेष बदलाव औपनिवेशिक काल के दौरान देखने को मिलता है इस समय बड़े स्तर पर पश्चिम नाटकों का मंचन हुआ. रंगकर्मियों ने पाश्चात्य नाटकों एवं पाश्चात्य रंग पद्धतियों पर आधारित नाटकों को खेलना प्रारंभ किया यह सिलसिला स्वतंत्रता प्राप्ति तक जारी रहा.

रंगनिर्देशकों ने प्रयोग की दृष्टि रंगमंच में नवीन सम्भावनाओं की तलाश जारी रखी. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारतीय रंग निर्देशकों ने भारतीय रंगमंच की मूल संभावनाओं को तलाशन प्रारंभ किया तो उनकी दृष्टि अपनी लोककलाओं की तरफ गई. लोककलाओं के संवर्धन एवं विकास को लेकर एक व्यापक चिंता कलाकरों, लोकअध्येयाताओं के मध्य पहले से थी अतः रंग निर्देशकों ने इन लोककलाओं को मंच पर सीधे प्रस्तुत न करते हुए प्रायोगिक रूप से इनके तत्वों का प्रयोग अपने नाटकों में किया. लोकशालियों को लेकर नाटकों में प्रयोग दो स्तर पर हुआ एक कथ्य के आधार पर दूसरा प्रस्तुति के आधार. यह वही समय है जहाँ नाटककारों ने लोकशैलियों को अपने नाटक का हिस्सा बनाया वहीँ हबीब तनवीर जैसे रंगनिर्देशकों ने अपनी लोककलाओं का प्रयोग करते हुए रंगमंच को एक नवीन दृष्टि प्रदान की.

सत्तर के दशक में यह अनुभव किया गया कि नाटयलेखन का ढर्रा पश्चिमी है और भारतीय रंगमंच में भारतीयता की खोज इसके पारंपरिक जड़ों से जुड़ कर होगी. इससे 'जड़ों के रंगमंच'(थियेटर आफ रूट्स) का मुहावरा सामने आया. नाट्य लेखन और मंचन में पारंपरिक रंग भाषा की तलाश होने

लगी. इस तलाश के लिये सनाअ ने युवा रंगकर्मियों को प्रोत्साहित किया, उत्सवों का आयोजन करके इन प्रयोगों को मंच भी दिया. हिंदी क्षेत्र में नौटंकी (आला अफ़सर, बकरी, हरिश्चन्नर की लड़ाइ जैसे नाटकों में) नाचा(हबीब तनवीर के नाटकों में), बिदेसिया(अमली, माटी गाड़ी, बिदेसिया में), तमाशा(घासीराम कोतवाल में) इत्यादि शैली के रंग तत्वों का इस्तेमाल हुआ. जड़ों के रंगमंच का मुहावरा एक आलांकारिक सज्जा में बदलता गया जिसका शहरी रंगमंच ने अपनी दृश्यात्मकता बढाने में उपयोग किया. पारंपरिक रंगमंच के सरंक्षण का कोई हल इससे नहीं निकल सका.

समकालीन भारतीय रंग-परिदृश्य में श्री हबीब तनवीर के महत योगदान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत में रंगमंच को उसकी बुनियादी जड़ों से जोड़ते हुए नाटक के क्षेत्र में लगभग एक प्रकार के लोक सांस्कृतिक-पुनरुत्थान को संभव बनाया. श्री हबीब तनवीर ने भारतीय नाट्य-शैली की प्रखर कला-दृष्टि, लोक-रंगविदग्धता और उसकी बहुआयामी कल्पनात्मक व्यापकता को पश्चिम के समक्ष समर्थ रूप में प्रमाणित करने का कार्य भी किया है.

हबीब तनवीर ही एक थे जिन्होंने लोक शैली के अभिनेताओं के साथ अपना रंगमंच किया. लोक शैली का केवल शिल्पगत प्रयोग ना करके उसे कथ्य का अनिवार्य हिस्सा बनाया उनके पश्चात ब.व.कारंत, सतीश आनंद, रतन थियम, अलखनंदन, संजय उपाध्याय, के.एन.पणिक्कर, त्रिपुरारी शर्मा, अर्जुन देव चारण इत्यादि ने रंगमंच पर लोकशैलियों को प्रस्तुत किया. इन प्रस्तुति ने एक और जहाँ लोकशैलियों को समकालीन सन्दर्भों में जीवंत रखा वहीँ भारतीय रंगमंच को विविध आयाम दिए. लोकशैलियों के मंचीय प्रयोग से लोककला के क्षेत्र एक व्यापक स्तर पर बदलाव हुए. क्षेत्रीय लोककलाओं के मंचीय प्रस्तुति से कई विलुप्त एवं लुप्तप्राय लोककलाएँ पुनः अस्तित्व में आई. लोकशैलियों के प्रयोग को लेकर एक बहस भी रंगकर्मियों ने मध्य हुई परंतु सच्चाई यही है कई क्षेत्रीय लोककलाओं को मुख्यधारा में लाने का कार्य इस माध्यम से हुआ. इन प्रस्तुतियों में लोकशैलियों को लेकर हुए प्रयोग को दर्शकों ने काफी सराहा वहीँ अपने लोककलाओं की धुनों, वेषभूषा, अभिनय, संगीत इत्यादि को मंच पर देखकर अपनी जड़ों से जुड़ जाते हैं.

लोकशैलियों के तत्वों का मंचीय प्रयोग करने से भारतीय रंगमंच की नवीन संभावनाओं को तलाशा गया. लोककलाओं के भविष्य को देखते हुए यह मंचीय प्रयोग एक दृष्टि से सार्थक प्रतीत होते हैं चुनौती अपनी मूल जड़ों को भी बचाने की है और भारतीय रंगमंच को नए दिशा की ओर ले जाने की भी. इस दृष्टि से देखा जाए तो समकालीन रंगमंच में लोकशैलियों के प्रयोग ने इस चुनौती को न केवल स्वीकार किया है बल्कि प्रभावी रूप से वैश्विक स्तर पर भारतीय रंगमंच को विशिष्ट पहचान दिलाई है.

प्रस्तुत शोध विषय के अंतर्गत एक ओर जहाँ समकालीन रंगमंच में लोकशैलियों के प्रयोग का एतिहासिक विवरण दिया गया है वहीँ रंगमंच पर लोकशैली के तत्वों का प्रयोग करके किए मंचित नाटकों का प्रस्तुतिपरक अध्ययन भी किया गया है. शोध विषय को विस्तार एवं प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करने हेतू इन मंचित नाटकों के निर्देशक, कलाकारों एवं नाटक से संबंधित अन्य व्यक्तियों, नाटककार, रंग समीक्षक इत्यादि के साक्षात्कार लिए गए हैं. लोकशैलियों के प्रयोग से रंगकर्मियों ने जिस नवीन रंगमंचीय संभावनाओं की तलाश की यह भारतीय रंगमंच के भविष्य के तौर पर भी अत्यंत उपयोगी है अतः समकालीन रंगमंच में लोकशैली के तत्वों को लेकर मंचित किए गए कुछ प्रमुख नाटकों का दस्तावेजीकरण भी इस शोध विषय का महत्वपूर्ण अंग है.

सम्पूर्ण शोध को चार अध्याय में विभक्त किया गया है-

शोध का प्रथम अध्याय 'प्रस्तावना एवं साहित्य पुनरावलोकन' है, इसमें शोध के स्वरुप एवं उससे सम्बंधित कार्यों की जानकारी है. **शोध का द्वितीय अध्याय 'भारतीय प्रायोगिक रंगमंच एवं लोककलाओं का तात्विक परिचय' है.** इसमें प्रयोग की दृष्टि से भारतीय रंगमंच के संक्षिप्त इतिहास एवं लोककला के तत्वों पर प्रकाश डाला गया है. **शोध का तृतीय अध्याय 'लोकशैलियों का परिचय एवं रंगमंचीय प्रयोग' है**. इसमें लोकशैलियों के परिचय एवं मंच पर हुए उनके प्रयोग आधारित नाटकों का वर्णन है. **शोध का चतुर्थ अध्याय 'रंगमंच पर लोकशैलियों का प्रयोग:**

उद्देश्य एवं प्रभाव' है. इसमें लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग के उद्देश्यों एवं उनके प्रभाव को रेखांकित किया गया है, जिसमें निर्देशकों, समीक्षकों, कला संरक्षकों की दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है.

शोध की प्रासंगिकता :-

भारतीय रंगमंच का वर्तमान दौर प्रयोगों का है. इन प्रयोगों ने भारतीय रंगमंच को नई रंग भाषा प्रदान की साथ ही विश्वपटल पर भारतीय रंगमंच को स्थापित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. भारत का यह प्रयोगात्मक स्वरुप अपनी क्षेत्रीय लोककलाओं और रंगमंच के समन्वय से स्थापित हुआ. सन 70 के दशक से अब तक लोकशैलियों में आधुनिक नाटकों को प्रस्तुत करने का दौर प्रारंभ हुआ जो आज तक जारी है. प्रस्तुत शोध इसी विशिष्टता को रेखांकित करता है, जिससे भारतीय रंगमंच के वर्तमान स्वरुप एवं इसके मूल को समझने में यह शोध सहायक सिद्ध होगा.

प्रस्तुत शोध में भारतीय रंगमंच के प्रसिद्द रंग हस्ताक्षरों, समीक्षकों की **दृष्टि को रखा गया है साथ ही लोकशैलियों के प्रयोग को लेकर दर्शकों का दृष्टिकोण इस शोध को आधार प्रदान करता है.** भारतीय प्रयोगात्मक रंगमंच के विशाल फलक को समझने में यह शोध आने वाले शोधार्थियों, कला प्रेमियों के लिए रंग दस्तावेज का कार्य करेगा.

उद्देश्य-

समृद्ध भारतीय रंग परंपरा का आधुनिक दौर प्रयोगात्मक रहा है. नाटकों के कथ्य से लेकर मंचन तक सभी स्तरों पर व्यापक प्रयोग देखने को मिलते हैं. रंगमंच पर लोकशैलियों की प्रस्तुति इन्हीं प्रयोगों का सार्थक एवं प्रभावी उदाहरण है. प्रस्तुत शोध विषय के अंतर्गत समकालीन रंगमंच में लोकशैलियों के

प्रयोग उसके उद्देश्य एवं प्रभाव का अध्ययन किया गया है, जिसमें लोकशैली को लेकर हुए प्रमुख नाट्य प्रस्तुतियों का दस्तावेजीकरण एवं इन प्रस्तुतियों का संपूर्ण विवरण शामिल है.

शोध प्रश्न

प्रस्तुत शोध से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्न, जिनके आधार पर शोध को दिशा प्राप्त हुई-

- भारत में लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग कब और कैसे प्रारंभ हुए ?
- लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग का मूल आधार क्या है अर्थात रंग निदेशक का इन प्रयोगों के पीछे क्या उद्देश्य है ?
- लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग से लोककलाओं के संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में क्या योगदान है ?
- लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग से भारतीय रंगमंच के मूल अस्तित्व का प्रश्न कैसे जुड़ता है ?

महत्त्व-

सन 70 दशक भारतीय रंगमंच में नई रंग भाषा के उद्भव के रूप में देखा जाता है जब संगीत नाटक अकादमी की लोकशैलियों के प्रयोग से भारतीय रंगमंच के मूल अस्तित्व की तलाश को लेकर योजना प्रारंभ हुई, जिसके तहत कई प्रस्तुतियां हुई. इन लोकशैलियों के मिश्रण से हुई प्रस्तुतियों ने एक ओर जहाँ भारतीय रंगमंच को प्रतिभासंपन्न रंग निर्देशक दिए वहीँ दूसरी ओर क्षेत्रीय लोककलाएं राष्ट्रीय पटल पर उभर कर आई. इन प्रयोगों का सिलसिला आज भी जारी है. अतः प्रस्तुत शोध

विषय भारतीय रंगमंच के इस महत्वपूर्ण पड़ाव को न केवल रेखांकित करता है बल्कि रंग निर्देशकों, समीक्षक के दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत करता है ताकि लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग और भारतीय रंगमंच की नयी रंगभाषा से सम्बंधित कई पहलू उभर कर आएं.

शोध समस्या एवं उपकल्पना –

- भारतीय रंगमंच प्रारंभ से ही प्रायोगिक रहा है. भरतमुनि से लेकर समकालीन रंगमंच पर व्यापक बदलाव हुए. बीसवीं सदी में भारतीय रंगमंच पर पाश्चात्य रंगमंच का विशेष प्रभाव देखने को मिलता है. विशेष तौर पर पाश्चात्य नाट्यशैलियों, रंगपद्धतियों का प्रयोग भारतीय रंगमंच पर देखने को मिलता है.
- ऐतिहासिक दृष्टि से स्वतंत्रता के बाद जब हमने हर क्षेत्र में अपने निजी और मौलिक स्वरूप की पहचान का प्रयत्न शुरू किया तो रंगमंच के क्षेत्र में भी भारतीय रंगमंच और नैजिक रंगदृष्टि की खोज शुरू हुई. परंपरा और प्रयोग के नाम पर उनके आधुनिक उपयोग के संदर्भ में लोकशैलियों का प्रयोग रंगमंच पर हुआ. जिसमें कई रंगकर्मियों को संस्कृत की शास्त्रीय नाट्य परंपरा की अपेक्षा अपनी लोकपरंपरा से जुड़ना अधिक सार्थक प्रतीत हुआ.
- लोकशैली और नाट्य प्रयोगों के पारस्परिक संबंधों को हम आलेख और प्रदर्शन के स्तर पर देख सकते हैं. नाटककारों तथा रंगकर्मियों ने अपने नाटकों में लोकशैलियों के तत्वों के रचनात्मक इस्तेमाल का मार्ग अपनाया. लोककलाओं के संगीत, नृत्य, वेशभूषा, कथानक, मंच इत्यादि तत्वों को प्रयोग करते हुए नवीन रंग पद्धति का निर्माण किया गया.
- समकालीन रंगमंच पर हबीब तनवीर, ब.व.कारंत, सतीश आनंद, रतन थियम, अलखनंदन, संजय उपाध्याय, के.एन.पणिक्कर, त्रिपुरारी शर्मा, अर्जुन देव चारण इत्यादि ने रंगमंच पर

लोकशैलियों को प्रस्तुत किया. इन प्रस्तुति ने एक और जहाँ लोकशैलियों को समकालीन सन्दर्भों में जीवंत रखा वहीँ भारतीय रंगमंच को विविध आयाम दिए.

शोध की समस्या एवं संभावनाएं

भारतीय रंगमंच की परंपरा अत्यंत प्राचीन है अपने हजारों वर्षों के इतिहास में रंगमंच पर अनेकों प्रयोग हुए हैं आज भी जारी है. समकालीन रंगमंच की दृष्टि से देखा जाए तो संपूर्ण भारत में सैकड़ों नाट्य प्रस्तुतियां हुई है जिनमें लोकशैलियों का प्रयोग हुआ है. अतः प्रस्तुत शोध में भारत की प्रमुख रंगनिर्देशकों एवं उनकी नाट्यप्रस्तुतियों का प्रस्तुतिपरक अध्ययन किया जायेगा, जिनमें लोकशैलीयों का प्रयोग प्रमुखता से हुआ है एवं अपने प्रयोग के कारण चर्चा के केंद्र रहे हैं.

शोध विधि-

प्रस्तुत शोध कार्य में मुख्यतः क्षेत्र सर्वेक्षण व विश्लेषणात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है.

तथ्य संकलन-

प्राथमिक स्रोत -

अवलोक विधि **(observation)**

साक्षात्कार **(Interview)**

प्रश्नावली विधि **(Questionnaire)** आदि।

द्वितीयक स्रोत -

विषय से संबन्धित प्रकाशित पुस्तकें, पत्रिकाओं के आलेख, वीडियो तथा अन्य स्रोतों का अध्ययन।

साहित्य पुनरावलोकन

किसी भी शोध कार्य को करने से पूर्व उससे संबंधित साहित्य का अध्ययन, समस्या के बारे में कुछ विशिष्ट प्रकृति के विषय में महत्वपूर्ण जानकरी प्राप्त करने में सहायक होता है. अध्ययन के समय ऐसी अनेक परिस्थितियां सम्मुख आती है, जिन्हें पार करने के लिए निर्धारित योजना का विकल्प अन्वेषित करना पड़ता है. अतः ऐसी समग्र परिस्थितियों का ज्ञान होना **परमआवश्यक है ताकि पहले से ही** विकल्पों की समुचित व्यवस्था की जा सके. इस प्रकार साहित्य के पुनरावलोकन के द्वारा शोधकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अध्ययन को किन-किन दिशाओं में मोड़ने से अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है.

पुनरावलोकन का अर्थ उन विभिन्न प्रकार की पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, लेख, संगोष्ठी, प्रकाशित व अप्रकाशित शोध ग्रंथों, ज्ञान कोशों तथा अभिलेखों से हैं, जिनके अध्ययन से शोधकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पना के निर्माण, अध्ययन की प्ररचना बनाने एवं कार्य को **आगे बढाने में** सहायता मिलती है. शोधकर्ता को अपने विषय में जब तक यह ज्ञान नहीं होगा कि सैद्धांतिक व् क्रियात्मक दृष्टि से कितना कार्य, किस विधि से किया जा चुका है तथा उसके निषकर्ष क्या निकले हैं, तब तक न तो वह समस्या का निर्धारण कर सकता है और न ही उसकी प्ररचना **तैयार करके कार्य को आगे बढ़ा सकता है.**

साहित्य का पुनरावलोकन किसी शोध प्रकरण पर चयनित दस्तावेज तथा दस्तावेजों का प्रभावशाली मूल्यांकन है. अर्थात शोध कार्य का पुनरावलोकन शोधार्थी द्वारा पूर्व में किए गये शोध कार्य का व्यवस्थित एवं आलोचनात्मक संश्लेषण है. संबंधित साहित्य के पुनरावलोकन से शोधकर्ता में अपने शोध कार्य के प्रति आत्मविश्वास बढ़ता है, कार्य की पुनरावृत्ति से बचता है तथा संभावित कठनाइयों के प्रति सजग रहता है. इसके साथ ही प्राप्त परिणामों की तर्कसंगत विवेचना कर परिणामों/निष्कर्षों को युक्तिसंगत बनाता **है.**

साहित्य का पुनरावलोकन करने का उद्देश्य शोध कार्य के लिए एक निश्चित वातावरण प्रदान करना तथा शोध कार्य की सार्थकता की दृष्टि प्रदान करता है. यह सुनिश्चित करना कि इस प्रकार का कार्य पहले नहीं हुआ या किया जाने वाला कार्य महज पुनरावृत्ति नहीं है. संबंधित साहित्य के पुनरावलोकन से अपनी शोध समस्या को विशिष्ट स्वरूप देना और समस्या परिवर्तित रूप में प्रस्तुत करना संभव होता है. पूर्व में किए गए शोध कार्य का अध्ययन वर्तमान में किए जाने वाले शोध अध्ययन के अंतराल तथा प्रसंगिकता को प्रतिपादित करना होता है.

प्रस्तुत शोध विषय **'समकालीन रंगमंच में लोकशैलियों का प्रस्तुतिपरक अध्ययन'** को लेकर शोध कार्य नहीं हुआ है. यह अवश्य है कि भारतीय समकालीन रंगमंच में प्रयोग पर आधारित आलेख एवं आधुनिक नाटक एवं रंगमंच से संबंधित पुस्तकें आधार रूप में प्राप्त होती है.

- **श्रीवास्तव, डॉ दमयंती, 'हिंदी नाटक में: आधुनिक प्रवृत्तियां', राका प्रकाशन, इलाहबाद, 1994**

यह पुस्तक हिंदी नाटकों में लोकनाट्य के प्रभाव को कथ्य के आधार पर रेखांकित करती है. आधुनिक हिंदी नाटकों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' विशेष रूप से गिना जाता है. सर्वेश्वर जी ने कथ्य को प्रभावी बनाने के लिए नौटंकी शैली का प्रयोग का किया है. इसी के आधार पर आधुनिक नाटक है जिनमें लोक तत्वों का प्रयोग हुआ है. लोकगीतों, लोककथाओं का प्रयोग नाटक को प्रभावी बनाने की दृष्टि से किया गया है.

- **पदमश्री देवीलाल सामर- आधुनिक नाट्य में लोकनाट्य तत्व (आलेख), राजस्थान साहित्य अकादमी, http://rsaudr.org/**

इस आलेख में पद्मश्री ने नाटकों में लोकनाट्य के प्रयोग को रेखांकित करते हुए इसके उदाहरण सहित प्रभावों की चर्चा की है.वह इस आलेख में लिखते हैं कि हमारे देश में नाट्य की कोई परंपरा ही नहीं है. दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दीं में संस्कृत नाटकों के ह्रास के बाद कोई दूसरी सशक्त परंपरा हमारे देश में, विशेष करके उत्तर भारत में नहीं पनपी. अंग्रेजों के जमाने में शेक्सपीरियन नाटक हमारे देश में आये और उनका रूपान्तर पारसी नाटक पद्धति में उत्तर भारत में हुआ. यह पारसी नाटक इस तरह हम पर हावी हो गया, विशेष करके उर्दू, हिन्दी में, कि हम अपनी अन्य सभी परंपराएँ भूल गये. यहाँ तक कि हमारे कई हिन्दी विद्वानों ने भी पारसी नाटक की शैली में अनेक नाटक लिखे। यह स्थिति उत्तर भारत में केवल हिन्दी, उर्दू-भाषी क्षेत्रों में देखी गई. अन्य क्षेत्रों में लोगों की निगाह नहीं गई क्योंकि यहाँ अनेक सशक्त लोकनाट्य-परंपराएँ पहले से मौजूद थीं.

देवीलाल मंच पर लोकनाट्य प्रयोगों के संबंध में विभिन्न पक्ष रखते हुए उत्तर भारत के प्रयोगों को एकपक्षीय मानते है अर्थात जिन लोकतत्वों का प्रयोग यहाँ के नाट्य निर्देशक करते हैं वह अपनी पूर्णता में नहीं है. वह मानते हैं कि लोकनाट्य प्रयोग हेतू हमें आपनी लोकपरंपराओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए अन्यथा वह खिचड़ी मात्र रह जाता है.

- **तनेजा, डॉ. जयदेव, 'समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच', तक्षशीला प्रकाशन, दिल्ली, 2002**

आधुनिक भारतीय नाटक और रंगमंच के इतिहास में सन **1960** से **1970** तक का समय अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों के सदैव याद किया जाएगा. यह समय रंगमंच पर अपने व्यापक प्रयोगों, भारतीय रंगमंच की खोज एवं विशुद्ध रूप से नई रंग भाषा के तलाश हेतू जाना जाता है. तनेजा जी ने इस पुस्तक में वर्तमान समय के प्रसिद्द रंग निर्देशकों, रंग आंदोलनों, एवं निजी आधुनिक

रंगमंच की खोज को रेखांकित किया है इसी खोज ने रंगमंच को लोक की तरफ वापस लौटाया एवं रंगमंच पर लोकशैलियों का प्रयोग होने लगा. यह पुस्तक भारतीय रंगमंच विशेषकर हिंदी रंगमंच के विभिन्न पक्षों को हमारे सामने प्रस्तुत करती है.

- **मोहन, नरेंद्र, 'समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच'(संपादित), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009**

यह पुस्तक समकालीन नाट्य कर्म, रंग-कर्म और नाट्यालोचना के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित है. समकालीन नाटक और रंगमंच की पूर्वपीठिका के साथ, इससे नाटक और रंगमंच के अंतर्संबंधी समस्याओं, प्रयोगों, पद्धतियों और शैलियों पर, दूसरी तरफ समकालीन नाटक के केंद्रीय सरोकारों और प्रवृत्तियों तथा इस दौर की विशिष्ट नाट्यकृतियों पर आधिकारिक विद्वाओं और नाटककारों द्वारा विचार किया गया है. यह विचार बिंदु संलग्न है. यह विचार किसी एक दृष्टिकोण को पुष्ट करने के लिए नियोजित नहीं है बल्कि विभिन्न दृष्टिकोण से नाट्य कर्म और रंग-कर्म को जांचने-परखने से जुड़ा है. विभिन्न मुद्दों पर निर्देशकों से बातचीत भी यहाँ शामिल है. इस तरह यह एक ऐसा विचार-विमर्श है जो नए नाट्य चिंतन का आधार बन सकता है.

पुस्तक की भूमिका में रंगमंच और नए नाटकों को परंपरागत शैलियों में प्रस्तुत करने पर नरेंद्र **मोहन अपने विचार रखते हैं-**

"कोई कला रूप या विधा अपने माध्यम की विशिष्टता और उससे जुडी परंपरा की पहचान किए बिना सार्थक नहीं हो सकता, न ही कोई उपलब्धि पा सकता है. नाटक में परंपरा बड़े सघन रूप में घुली गुंथी होती है.- विभिन्न कलाओं- नृत्य, संगीत आदि की सहभागिता के साथ. हम चाहे आज के नाटक की बात करें या सौ साल पहले की, रंग-**शिल्प की नयी से नयी पद्धतियों के साथ-** साथ, नाट्य परंपरा के उन तत्वों और उपादानों की समझ ज़रूरी है, जो आज भी हमारे लिए उपयोगी हो सकते हैं."

यह तो कई बार देखा गया है कि पारंपरिक रंग पद्धतियों और शैलियों ने नई पद्धतियों और शैलियों से अंतःसंबंध होकर नट्यानुभूति को उत्कर्ष प्रदान किया है. इसी तरह नए प्रयोगशील रंगमंच ने पुरानी शैलियों को कई बार समकालीन अर्थ में प्रासंगिक बना दिया है. बड़ी बात यह है कि परंपरागत नाट्य शैलियों का सर्जनात्मक उपयोग कैसे करते हैं और उनके जरिए नए नाट्य बोध को, अपने समय के सच को कैसे अभिव्यक्त करते हैं ?

पुस्तक में इस पक्ष पर बातचीत है कि **पुराने नाटकों को नयी शैलियों में और नए नाटकों को पुरानी परंपरागत शैलियों में जब खेला जाता है तो अतीत और वर्तमान, परंपरा और आधुनिकता एक नाट्य बिंदु पर एकाग्र हो जाते हैं.** पुस्तक कई उदाहरणों के साथ इस बात को पुष्ट करती है-

'अभिज्ञान शाकुंतलम' और 'मिटटी की गाड़ी' का आधुनिक टेक्नीक में 'सैयां भए कोतवाल' का तमाशा शैली में और 'जस्मा ओडन' का भवाई शैली में. सर्वेश्वर का 'बकरी' नाटक नौटंकी शैली में, मणि मधुकर का 'रस गन्धर्व' और 'दुलारीबाई' नाटक राजस्थानी लोकनाट्य रूप में और हबीब तनवीर का चरणदास चोर' छत्तीसगढ़ी लोकशैली में खेले गए.

इन सभी बातों से यह पक्ष निकल कर आता है कि नए रंग साधनों और नयी रंग दृष्टि का उपयोग इन नाटकों में किया गया. पुरानी परंपरागत पद्धतियों के भीतर से नए नाट्य बोध को उभारना और नए नाट्य बोध की अभिव्यक्ति में परंपरागत शैलियों को भुला देना आधुनिक नाट्य विधान की निश्चय ही, एक महत्वपूर्ण विशेषता है.

पुस्तक में डॉ नरनारायण राय द्वारा लिखित आलेख 'आधुनिक नाट्य शिल्प और समकालीन रंगमंच', डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी का आलेख 'नाटक और लोक-नाट्य: अंतर्क्रिया और विकास', डॉ. सत्येन्द्र कुमार तनेजा का आलेख 'रंगमंच की प्रभुता और मौलिक नाट्य लेखन',

डॉ सुरेश वशिष्ठ का आलेख 'लोकनाट्य और समकालीन रंगकर्म' समकालीन रंगमंच में लोकशैलियों के प्रयोग एवं उसके विभिन्न पक्षों को हमारे समक्ष रखते हैं.

- **शर्मा, डॉ. प्रभात, 'हिंदी नाटक: इतिहास-दृष्टि और समकालीन बोध', संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2010**

प्रस्तुत पुस्तक स्वातंत्र्योत्तर भारतीय रंगमंच विशेषकर हिंदी रंगमंच में प्रयोग को रेखांकित करती है. डॉ प्रभात इस पुस्तक में लिखते हैं –

"लोककथाओं और लोकनाटकों के प्रभाव से हिंदी नाट्य लेखन संबंधी विचारों में व्यापक परिवर्तन आये हैं. नाटकों में कल्पना, खुलापन तथा पारंपरिक रुढियों के प्रयोग बढे हैं नृत्य तथा संगीत को पहले से अधिक मान्यता मिली है. सीधे दर्शक समुदाय से नाटककार का साक्षात्कार हुआ है. 'मुद्राराक्षस' ने नौटंकी के आधार पर सफल नाट्य प्रयोग किए हैं. मणि मधुकर ने राजस्थानी लोककथाओं व् लोकनाटकों की शैली में गीत तथा अभिनय प्रस्तुत किए. हिंदी नाटकों में लोकनाट्य के आधार पर अनेक प्रयोग हुए है. लोकयुक्तियों व् रुढियों सशक्त प्रयोग द्वारा नाटककारों ने समकालीन सत्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है"

हिंदी नाटकों ने संस्कृत और लोकनाट्य परंपरा के अनेक तत्वों को अंतस्थ करते हुए कई सफल इतिहासनुप्रयोग किए हैं.

लोकशैलियों के रंगमंचीय प्रयोग की दृष्टि से यह पुस्तक रेखांकित करती है कि किस आधार पर निर्देशक लोकशैलियों का प्रयोग करते हैं जैसे कथ्य, शिल्प, शैली, भाषा व् रंगमंचगत प्रयोग के आधार पर.